डॉ. वीरेन्द्र कुमार मीणा

दलित साहित्य की सैद्धान्तिकी

दलित साहित्य की सैद्धांतिकी पर विचार करने के क्रम में 'दलित' शब्द पर पहले विचार करना आवश्यक है| 'दलित' शब्द जब साहित्य के साथ जुड़ता है तो वह साहित्य परम्पराशील साहित्य से अलग नजर आता है। इसके अलग नजर आने का कारण 'दलित' शब्द में अन्तर्निहित चेतना है। जिसका सामाजिक, सांस्कृतिक आधार है। 'दलित' शब्द के प्रयोग से पहले जिन जातियों को अछूत माना जाता रहा है उनके लिए चांडाल, अंत्यज, अवर्ण, अस्पृश्य, पंचम, हरिजन जैसे शब्दों का प्रयोग किया जाता रहा है| यह शब्द समाज में इन जातियों की हीन दशा का बोध कराता है। सवर्ण समुदाय द्वारा दिए गए ये नाम इन जातियों को निम्न तथा सवर्ण जातियों को श्रेष्ठ मानकर दिए गये हैं। इन सभी सम्बोधनों को नकारते हुए अब निम्न समझी जानेवाली जातियों ने 'दलित' शब्द को अपनी पहचान के रूप में अपनाया है। इस शब्द को अपनाने का कारण इसमें अन्तर्निहित चेतना ही है।

दलित शब्द में निहित भावों को, उसकी चेतना को हम डॉ. रामचन्द्र के इस कथन के आधार पर समझ सकते हैं– **''दलित अस्मिताबोधक शब्द है। यह संबोधन उत्पीड़न और शोषण का बोध भी कराता है। शोषक वर्ग के कृत्यों को याद दिलाते रहने वाला क्रांतिकारी भाव भी इस शब्द में निहित है। इसमें चेतना की अनुगूँज भी है। दलित शब्द सहानुभूति के बजाय दायित्वबोध का अहसास कराता है। कहा जा सकता है कि दलित विमर्श 'दलित' शब्द के अभिप्राय के साथ सामाजिक परिवर्तन की ओर उन्मुख करता है तथा दलित चेतना का संचार करता है।''**[1] 'दलित' शब्द की इस व्याख्या के अन्दर सम्पूर्ण दलित साहित्य की वैचारिकी और सैद्धांतिकी नजर आती है।

दलित कौन है? इस आधार पर भी बहुत से आलोचकों ने इसे परिभाषित किया है| उनमें से कुछ परिभाषाओं पर यहाँ विचार किया जा सकता है| दलित शब्द को परिभाषित करते हुए ओमप्रकाश वाल्मीकि लिखते हैं, **"'दलित' शब्द का अर्थ है– जिसका दलन और दमन हुआ है, दबाया गया है, उत्पीडित, शोषित, सताया हुआ, गिराया हुआ, उपेक्षित, घृणित, रौंदा हुआ, मसला हुआ, कुचला हुआ, विनिष्ट, मर्दित, पस्त–हिम्मत, हतोत्साहित, वंचित आदि|"**[2] इसी प्रकार कँवल भारती 'दलित' शब्द को परिभाषित करते हुए कहते हैं– **"दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है| जिसे कठोर और गंदे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है| जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतंत्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर सछुतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं**

की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अंतर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है|"[3] जबकि प्रो. श्यौराज सिंह बेचैन 'दलित' शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं, **"दलित' वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है|"[4]**

इन आलोचकों के अलावा भी कई अन्य आलोचकों ने भी 'दलित' शब्द को परिभाषित किया है, लेकिन यहाँ उन सभी के विचारों को ध्यान में रखते हुए हम यह मान सकते हैं कि 'दलित' वही है, जिसका दलन और दमन हुआ है, जिसको दबाया गया है, जिसको उत्पीड़ित किया गया है, जिसका शोषण किया गया है, जो समाज में उपेक्षित है, जिसको घृणित समझा जाता है, जिसको मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया है। इसके अलावा वह वर्ग इसमें मुख्य रूप से सम्मिलित है जिसे संविधान में 'अनुसूचित जाति' कहा गया है।

भारत में सदियों से ब्राह्मणवादी विचारधारा और राजसत्ता में एक गठबंधन रहा है। जिसके आधार पर ही सदियों से निम्न जातियों का शोषण होता रहा है। निम्न समझी जाने वाली जातियों को मनुवादी समाज व्यवस्था ने अपनी जंजीरों में मजबूती के साथ जकड़ रखा था और यहाँ की सत्ता उसके इस कार्य में उसका साथ देती आ रही थी। इतना ही नहीं आज भी सत्ता में कई ऐसे राजनीतिक दल हैं जो उस मनुवादी व्यवस्था का समर्थन करते हैं। लेकिन जब–जब इस मनुवादी विचारधारा और राजसत्ता का गठबंधन कमजोर पड़ा है, तब–तब निम्न समझी जाने वाली जातियों में चेतना आई और उन्होंने स्वतंत्रता समानता और अधिकारों की मांग की। चाहे वह मुसलमानों के आने के समय निम्न समझी जाने वाली जातियों के निर्गुण संत कवियों का उदय हो या अंग्रेजों के आने के बाद ज्योतिबा फूले और डॉ. अम्बेडकार जैसे विचारकों के उदय का प्रश्न हो। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि 'दलित' चेतना शून्य नहीं रहे हैं, चाहे उन्हें ज्ञान के क्षेत्र से सदियों तक दूर रखा गया हो| उनमें चेतना का प्रसार होता रहा है। वर्तमान समय में जिस रूप में दलित चेतना हमारे सामने है उसके विकास में अंग्रेजों का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जिस प्रकार शुक्ल जी ने कहा है कि 'मुसलमानों के आने के कारण से भक्ति' आन्दोलन का उदय हुआ है। उसी प्रकार यह भी माना जा सकता है कि अंग्रेजों के आने से 'दलित आन्दोलन' का उदय हुआ है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि दलितों में पहले से चेतना नहीं थी। उनमें चेतना थी, लेकिन उसे फलने फूलने का मौका अंग्रेजों के आने के बाद ही मिला। अंग्रेजों के भारत में आगमन के बाद शिक्षा और ज्ञान के द्वार निम्न समझी जाने वाली जातियों के लिए खुले। जिससे उन्हें अपने प्राचीन इतिहास और शोषण का बोध हुआ। शिक्षा प्राप्त करके ज्योतिबा फूले सावित्रीबाई फूले और डॉ. अम्बेडकर जैसे विचारकों का उदय हुआ। जिनके विचारों के प्रभाव में

दलितों में चेतना का प्रसार हुआ। उस समय में दलित चेतना का यह प्रसार हमें एक आन्दोलन के रूप में दिखाई पड़ता है। दलित चेतना और दलित आन्दोलन के विकास के साथ–साथ दलित साहित्य भी उस समय में विकसित हुआ।

आजीवक मक्खिल गोसाल– बुद्ध – सरहपा – संत कवि कबीर – रैदास – गुरु घासीदास – ज्योतिबा फूले – नारायण गुरु – पेरियार नायकर – मंगू राम जी – स्वामी अछूतानन्द – चाँद गुरु – हीरा डोम और डॉ. अम्बेडकर यह परम्परा उन दलित विचारकों की है जिनसे दलित आन्दोलन, दलित राजनीति ओर दलित साहित्य ने विचारधारा प्राप्त की और अपनी एक सैद्धान्तिकी का निर्माण किया।

बुद्ध के जो विचार थे उनको सिद्ध कवियों ने आगे बढ़ाया, जिनमें बहुत से दलित कवि थे। सरहपा उनमें प्रमुख थे। बौद्ध धर्म में समानता और तर्क पर अधिक बल दिया गया है। दलित साहित्य ने उनको अपनाया है। संत कवियों ने ईश्वर और आत्मा के अस्तित्व को नकारा। दलित चेतना का यह भी प्रमुख बिन्दू है। ज्योतिबा फूले और सावित्रीबाई फूले ने मिलकर स्त्री और दलितों के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण कार्य किये। सन् 1848 ई. में उन्होंने स्त्रियों के लिए स्कूल खोला। सन् 1873 ई. में ज्योतिबा फूले की रचना 'गुलामगिरी' आई, जिसके माध्यम से दलितों ने अपने शोषण को पहचाना। इन कार्यों के लिए उन्हें बहुत–सी परेशानियों का सामना करना पड़ा। अछूत न होते हुए भी उनके साथ अछूतों के जैसा व्यवहार किया गया। नारायण गुरु ने एक जात, एक धर्म, एक ईश्वर का नारा दिया। मंगू राम जी ने पंजाब में 'आध धर्म' चलाया। स्वामी अछूतानन्द ने कई पत्रिकाएँ निकाली और 'आदि हिन्दू आन्दोलन' भी चलाया। चाँद गुरु ने चांडाल शब्द को हटाने का आन्दोलन किया और 'मटुआ' धर्म चलाया।

इसी परम्परा की अगली कड़ी के रूपमें डॉ. अम्बेडकर, हमारे सामने आते हैं जिन्होंने महत्वपूर्ण बातों को या सिद्धांतों को इस परम्परा से ग्रहण किया और वर्तमान समय के अनुरूप उनको बनाया। शिक्षा, समानता और स्वतंत्राता पर उन्होंने सबसे अधिक जोर दिया। सन् 1956 ई. में उन्होंने शोषण और वर्णव्यवस्था पर टिके हुए हिन्दू धर्म को छोड़कर समानता, स्वतंत्रता और वैज्ञानिकता पर आधारित बौद्ध धर्म को ग्रहण किया। धर्म परिवर्तन करते समय उन्होंने 22 प्रतिक्षाएँ ली जिनका दलित चेतना में महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः उन प्रतिज्ञाओं से जो चेतना समाज में आई वही चेतना साहित्य में भी आई जिससे उसकी सैद्धांतिकी का निर्माण हुआ।

'दलित' शब्द के अर्थ व दलित विचारकों की परम्परा का यहाँ उल्लेख करना इसलिए जरूरी था क्योंकि दलित साहित्य इन्हीं से ऊर्जा प्राप्त करता है। उसकी विचारधारा और सैद्धांतिकी इसी पृष्ठभूमि से बनी है। डॉ. अम्बेडकर के जीवन से दलित चेतना मुख्य ऊर्जा ग्रहण करती है और इस बात को सभी ने स्वीकार भी किया है। इसी आधार पर ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित चेतना के कुछ बिन्दु बतायें हैं। ये बिन्दू दलित साहित्य में भी प्रमुख स्थान रखते हैं। ये बिन्दु निम्नलिखित हैं–

''1. **मुक्ति और स्वतंत्राता के सवालों पर डॉ. अम्बेडकर के दर्शन को स्वीकार करना।**

2. **बुद्ध का अनीश्वरवाद, अनात्वमवाद, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, पाखंड–कर्मकांड विरोध।**

3. **वर्ण–व्यवस्था विरोध, जातिभेद विरोध, साम्प्रदायिकता विरोध।**

4. **अलगाववाद का नहीं, भाईचारे का समर्थन।**

5. **स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय की पक्षधरता।**

6. **सामाजिक बदलाव के लिए प्रतिबद्धता।**

7. **आर्थिक क्षेत्रा में पूँजीवाद का विरोध।**

8. **सामन्तवाद, ब्राह्मणवाद का विरोध।**

9. **अधिनायकवाद का विरोध।**

10. **महाकाव्य की रामचन्द्र शुक्लीय परिभाषा से असहमति।**

11. **पारम्परिक सौन्दर्यशास्त्र का विरोध।**

12. **वर्णविहीन, वर्गविहीन समाज की पक्षधरता।**

13. **भाषावाद, लिंगवाद का विरोध।''**[5]

जैसा कि शुक्ल जी ने कहा है कि 'साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है, अत: हम यह मान सकते हैं कि दलित समाज और लेखकों की चितवृत्तियों में यह बिन्दु आये तो दलित साहित्य में भी इन्हीं बिन्दुओं ने प्रमुख स्थान पाया और ईश्वर के अस्तित्व से नकार, वर्णव्यवस्था का विरोध, स्वतंत्राता समानता का समर्थन, सामंवाद–पूँजीवाद का विरोध इन विषयों ने दलित साहित्य में प्रमुख स्थान पाया। इस बात को ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने स्वीकार किया है। वे लिखते हैं, **''डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जीवन–संघर्ष में, जो दलितों में एक नई चेतना का सूत्रपात करता है, जिसे मुक्ति–संघर्ष की चेतना कहना ज्यादा प्रासंगिक होगा। यही चेतना साहित्य**

की प्रेरणा बनकर दलित साहित्य के रूप में दिखाई देती है। जिसमें मुक्ति, स्वतंत्राता के गंभीर सरोकार विद्यमान है। अनीश्वर, अनात्मवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, पाखंड–कर्मकांड का विरोध, सामाजिक न्याय की पक्षधरता, वर्ण व्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद, बाजारवाद का विरोध, सांप्रदायिकता का विरोध, अधिनायकवाद का विरोध जैसे सवाल दलित साहित्य के सरोकारों में शामिल हैं।''[6] जिन बिन्दुओं की चर्चा ओमप्रकाश वाल्मीकि जी ने की है दलित साहित्य की सैद्धांतिकी यही है जिसको हम बिन्दुवार रूप में इस प्रकार भी देख सकते हैं–

1. दलित साहित्य वेदना का साहित्य है।

2. दलित साहित्य में नकार और विद्रोह है।

3. दलित साहित्य स्वानुभूति पर आधारित है।

4. दलित साहित्य में प्रतिबद्धता है।

5. दलित साहित्य ईश्वर और आत्मा में विश्वास नहीं करता है

6. दलित साहित्य वैज्ञानिक दृष्टिकोण का समर्थन और पाखंड–कर्मकांड का विरोध करता है।

7. दलित साहित्य समानता, स्वतंत्रता व अधिकारों का समर्थन करता है।

8. दलित साहित्य में सामंतवाद, पूंजीवाद, बाजारवाद का विरोध है।

9. दलित साहित्य साहित्य के मूल्यांकन के जो संस्कृत और पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धांत है उनको नकारता है।

10. दलित साहित्य ब्राह्मणवाद और वर्णव्यवस्था के खिलाफ है।

दलित साहित्य की इन्हीं विशेषताओं से मिलकर उसकी एक सैद्धांतिकी का निर्माण हुआ। इन बिन्दुओं पर हम विस्तार से भी विचार कर सकते हैं। दलित जातियों की जो हजारों वर्षों की वेदना थी वह साहित्य के माध्यम से हमारे सामने आई। आत्मकथाओं और कविताओं में हम इसे स्पष्ट रूप से देख सकते हैं। यह वेदना न तो एक व्यक्ति की है ओर न ही एक वर्ष की। यह वेदना हजारों लोगों और हजारों वर्षों की है। अतः इसीलिए यह वेदना

सामाजिक रूप में हमारे सामने आती है। किसी भी आत्मकथा को हम इसके उदाहरण के रूप में देख सकते हैं। इसी वेदना के फलस्वरूप दलित साहित्य में नकार और विद्रोह पैदा हुआ है। यह विद्रोह और नकार दलित साहित्य में उस शोषणकारी परम्परा के खिलाफ है जो दलितों पर हजारों वर्षों से लाद रखी है। इस शोषणकारी व्यवस्था में जीने से जो अनुभव दलितों को प्राप्त हुए हैं उनका वर्णन उन्होंने दलित साहित्य में किया है। इसीलिए इस साहित्य के साथ सहानुभूति और स्वानुभूति का सवाल पैदा हुआ। जिस जीवन को दलितों ने हजारों वर्ष जीया है उसका कोई कैसे अनुभव कर सकता है और कोई करने का दावा करता है, तो अभी तक हजारों वर्षों से किया क्यों नहीं?

दलित साहित्य दलित समाज के प्रति प्रतिबद्ध है। समानता–स्वतंत्रता और शोषण रहित समाज की स्थापना करना उसका प्रमुख लक्ष्य है। प्रतिशोध एवं हिंसा जैसे तत्त्व दलित सात्यि में नहीं दिखाई देते हैं। इसी प्रकार दलित साहित्य ईश्वरवाद और आत्मा के अस्तित्व के विरोध में है। कविता, कहानी, आत्मकथाओं में हमें स्पष्ट दिखाई देता है। 'तुम्हारी गौरवगाथा' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं– **''क्यों नहीं जागृत हो जाता देवता / प्राण प्रतिष्ठा के बाद / क्यों रह जाता है जड़ / भूख और जुल्म देखकर / न जाने कितना दूध / बहा दिया तुमने नाली में / भूखे बच्चों से छीनकर''**[7]

इसी प्रकार दलित साहित्य धार्मिक कर्मकांड एवं पाखंडों का विरोध करता है। दलित साहित्य हिन्दू धर्म के उन सभी कर्मकांडों के विरोध में है जो शोषण पर आधरित है। 'अस्थि–विसर्जन' कविता में ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं– **''इसीलिए तय कर लिया मैंने / नहीं नहाऊँगा ऐसी किसी गंगा में / जहाँ पंडे की गिद्ध–नजरें गड़ी हों / अस्थियों के बीच रखे सिक्कों / और दक्षिणा के रुपयों पर / विसर्जन से पहले ही / झपट्टा मारने के लिए बाज की तरह।''**[8] धार्मिक कर्मकांड की तरह ब्राह्मणवाद का भी विरोध दलित साहित्य करता है। मलखान सिंह की 'सुनो ब्राह्मण' कविता में इसे हम देख सकते हैं– **''हमारी दासता का सफर / तुम्हारे जन्म से शुरु होता है / और इसका अन्त भी / तुम्हारे अन्त के साथ होगा।''**[9]

ओमप्रकाश वाल्मीकि की कहानियों में भी हम ईश्वर, आत्मा, ब्राह्मणवाद, धार्मिक–कर्मकांड आदि के विरोध को देख सकते हैं। इन्हीं सभी व्यवस्थाओं का विरोध करते हुए दलित साहित्य समानता की बात करता है। सम्पूर्ण दलित साहित्य का मूलाधार भी यही है।

इसी के साथ–साथ दलित साहित्य हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन के सिद्धांतों को भी नकारता है जो संस्कृत और पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर आधारित है। ओमप्रकाश वाल्मीकि जी लिखते हैं– **''हिन्दी साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र संस्कृत और पाश्चात्य सौन्दर्यशास्त्र पर आधारित है। इसीलिए उसकी कसौटियाँ दलित साहित्य के मूल्यांकन में अक्षम साबित होती है। संस्कृत साहित्य का मूल आधार सामन्तवादी एवं ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण है। उसी प्रकार पाश्चात्य साहित्य की सौन्दर्यदृष्टि भी पूंजीवादी एवं सामन्तवादी है।''**[10] साहित्य के इन्हीं सौंदर्यशास्त्रों के आधार पर आरम्भ में दलित साहित्य को भी ख़ारिज करने के प्रयास किये गये| कभी दलित साहित्य की भाषा पर प्रश्न चिन्ह खड़े किये गये तो कभी उसकी विषय–वास्तु पर| लेकिन जिन आधारों पर दलित साहित्य की आलोचना की गई, वही उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है| अत: इसीलिए 'दलित साहित्य' साहित्य मूल्यांकन के उन परम्परागत आधारों या कहें कि सिद्धांतोंको नकारता है, जो कि संस्कृत और पाश्चात्य काव्यशास्त्र पर आधारित है| अतः दलित साहित्य के मूल्यांकन के लिए हमें नये सिद्धांतों का निर्माण करना होगा जो न तो सामन्तवादी एवं ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण के हो न ही पूंजीवादी दृष्टिकोण के। वे सिर्फ समानता पर आधारित दृष्टिकोण के ही हो सकते हैं जिनके आधार पर दलित साहित्य का मूल्यांकन हो सकता है।

निष्कर्ष रूप में हम देख सकते हैं कि निम्न समझी जानेवाली जातियों से आने वाले चिन्तकों की परम्परा और डॉ. अम्बेडकर के प्रभाव से जो चेतना दलितों में आई उसी चेतना ने दलित साहित्य में स्थान पाया और वही दलित साहित्य की सैद्धांतिकी के रूप में हमारे सामने है। 'दलित' साहित्य से संबंधित प्रत्येक रचना का मूल स्वर इसी सैद्धांतिकी पर आधारित रहता हैं| जिसको 'दलित साहित्य से संबंधित प्रत्येक रचना में देखा भी जा सकता है| चाहे वह आत्मकथा हो या फिर चाहे कहानी, उपन्यास या साहित्य की कोई भी और विधा| मूल सरोकार दलित साहित्य का इसी सैद्धांतिकी पर टिका हुआ है| दलित साहित्य की यह सैद्धांतिकी हिन्दी साहित्य में लोकतंत्र की शुरूआत करती है। इसमें उन बिन्दुओं को स्थान दिया गया है जो साहित्य में अभी तक उपेक्षित थे।

संदर्भ सूची

1. साहित्य का नया सौन्दर्यशास्त्र – सं. देवेन्द्र चैबे (लेख – हिन्दी दलित विमर्श की वैचारिकता – डॉ. रामचंद्र) किताबघर प्रकाशन – नयी दिल्ली, पृ. 179
2. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं. 13
3. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं. 13

4. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र – ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं. 13
5. 'दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र' – ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 31
6. 'ओमप्रकाश वाल्मीकि: दलित चेतना और हिन्दी कथा साहित्य', समकालीन जनमत, अक्टूबर–दिसम्बर 2002, पृ. 52–53
7. 'दलित साहित्य अनुभव, संघर्ष एवं यथार्थ': ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 28
8. 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर': सं. विमल थोरोट, सूरज बडत्या, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 32
9. 'भारतीय दलित साहित्य का विद्रोही स्वर': सं. विमल थोरोट, सूरज बडत्या, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, पृ. 29
10. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र: ओमप्रकाश वाल्मीकि, पृ. 45

सहायक आचार्य, हिंदी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
G-Mail: vkmeena1087@gmail.com